P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

कला में प्रतीकवाद की अभिव्यक्ति

महेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग
जे०वी० जैन कॉलेज,
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

मानव विकास के विभिन्न चरणों में मानव सभ्यता व संस्कृति के विविध पक्षों व क्रिया–व्यापार से सम्बन्धित विविध प्रतीकों का विकास हुआ। इस प्रकार, प्रतीकवाद मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास व ज्ञान–विज्ञान से सम्बन्धित है। दार्शनिकों, विद्वानों व ऋषि–मुनियों ने पौराणिक मान्यताओं को भी प्रतीक रूप में रचकर विवेच्य विषय को ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। सृष्टिकर्ता अरूप, अगोचर, अनन्त, व अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त करने और सुग्राह्य बनाने के लिए ही दार्शनिकों व ऋषियों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनेक देवी–देवताओं को प्रतीक रूप में प्रतिष्ठित किया है। अभिव्यंजना पद्धति का अभिन्न अंग होने के कारण प्रतीक का कला से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन नदी–घाटी सभ्यताओं की प्रारम्भिक लिपियों का स्वरूप प्रायः चित्रों के रूप में विकसित हुआ था। विभिन्न विषयों जैसे गणित, रसायन, धर्म, तन्त्र, कला, लोक–व्यवहार से सम्बन्धित प्रतीक भी विकसित हुए तथा समाजशास्त्रीय, सौन्दर्यशास्त्रीय, तान्त्रिक, जीवशास्त्रीय, दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीक व प्रतीकवाद की व्याख्या की गई। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में कला और प्रतीक का सम्बन्ध या कला के संदर्भ में प्रतीकवाद ही प्रमुख से रूप से विवेच्य है। सृष्टि की दृश्य एवं भौतिक वस्तुओं का चित्रण कलाओं में सरलता से किया जा सकता है किन्तु कलाकार के अदृश्य और अभौतिक सूक्ष्म भावों, विचारों और अनुभूतियों को कलाओं में प्रतीकों के माध्यम से ही अंकित किया जा सकता है। गूढ़, दुरूह विचारों और अनुभूतियों को कला में प्रतीकों के माध्यम से सरलता से व्यक्त किया जाता है ताकि दर्शक व श्रोता को कलाकार की अनुभूतियों को उसी रूप में संम्प्रेषित किया जा सके, जिस रूप में कलाकार उन्हें अनुभव करता है।

मुख्य शब्द : प्रतीकवाद, भारतीय कला।

प्रस्तावना

प्रतीकवाद का सम्बन्ध मनुष्य की अभिव्यंजना, सम्प्रेषण और आदान–प्रदान की क्रियाओं से हैं। प्रागैतिहासिक मानव ने अपने भावों विचारों और अनुभूतियों के आदान–प्रदान के लिए शारीरिक अंगों–उपांगों एवं कंठ की ध्वनियों के संकेतों, चिन्हों एवं ध्वनि–बिम्बों की पद्धति का विकास किया था। यह प्रतीकों का प्रारम्भिक स्वरूप था। बाद में भाषा का विकास हुआ। भाषा भी एक प्रकार से प्रतीकवाद का ही अंग है। प्राचीन सभ्यताओं में लिपि का विकास भी प्रतीक चिन्हों या चित्रों के रूप में ही हुआ था। विकास के अगले चरण में व्यापार सम्बन्धी आदान–प्रदान हेतु कोड़ी, पशु, मुद्राओं आदि का उपयोग होने लगा। यह भी प्रतीकवाद का ही एक रूप था। मानव विकास के विभिन्न चरणों में मानव सभ्यता व संस्कृति के विविध पक्षों व क्रिया–व्यापार से सम्बन्धित विविध प्रतीकों का विकास हुआ। इस प्रकार, प्रतीकवाद मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास व ज्ञान–विज्ञान से सम्बन्धित है। प्रतीक का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ० ममता सिंह ने लिखा है, ''सत्य को जानने की प्रथम सीढ़ी है प्रतीक। सत्य में प्रवेश करने का द्वार प्रतीक के माध्यम से ही सम्भव है। जीवन के साक्षात्कार के साथ ही वैज्ञानिक अवधारणाओं का प्रतिपादन करने में हम प्रतीक का ही आश्रय लेते है। सत्य की खोज के लिए प्रतीक एक ऐसी कल्पना है जिसमें अद्भुत शक्ति है।''[1] इस कथन में प्रतीक को आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक, दोनों दृष्टियों से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। दार्शनिकों, विद्वानों व ऋषि–मुनियों ने पौराणिक मान्यताओं को भी प्रतीक रूप में रचकर विवेच्य विषय को ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। सृष्टिकर्ता अरूप, अगोचर, अनन्त, व अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त करने और सुग्राह्य बनाने के लिए ही दार्शनिकों व ऋषियों ने ब्रहमा, विष्णु, महेश आदि अनेक देवी–देवताओं को प्रतीक रूप में प्रतिष्ठित किया है।

अभिव्यंजना पद्धति का अभिन्न अंग होने के कारण प्रतीक का कला से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन नदी–घाटी सभ्यताओं की प्रारम्भिक लिपियों का

स्वरूप प्रायः चित्रों के रूप में विकसित हुआ था। विभिन्न विषयों जैसे गणित, रसायन, धर्म, तन्त्र, कला, लोक–व्यवहार से सम्बन्धित प्रतीक भी विकसित हुए तथा समाजशास्त्रीय, सौन्दर्यशास्त्रीय, तान्त्रिक, जीवशास्त्रीय, दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीक व प्रतीकवाद की व्याख्या की गई। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में कला और प्रतीक का सम्बन्ध या कला के संदर्भ में प्रतीकवाद ही प्रमुख से रूप से विवेच्य है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में प्रतीक के स्वरूप, प्रतीक और कला का सम्बन्ध तथा भारतीय कला में प्रतीकीकरण का अध्ययन निम्न उद्देश्य पर केन्द्रित है :

1. प्रतीक के अर्थ, स्वरूप व उद्देश्य का अध्ययन।
2. कला और प्रतीकवाद के सम्बन्ध की व्याख्या।
3. प्रतीक के विविध आयामों, कार्यों व उसकी अनेक विशेषताओ, लक्षणों, भेदों का संक्षिप्त परिचय।
4. प्रागैतिहासिक भारतीय कला में प्रतीक के उदय भिन्न–भिन्न कालखण्डों व भिन्न–भिन्न कला शैलियों में प्रतीक प्रयोग का अध्ययन।

प्रतीक का अर्थ एवं परिभाषा

ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति, धर्म, तन्त्र, कला, साहित्य आदि के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतीक के अर्थ, स्वरूप व उपयोग भिन्न–भिन्न होते है। प्रतीक का सामान्य अर्थ 'संकेत' या 'चिन्ह' होता है किन्तु अलग–अलग प्रसंगों में प्रतीक की गूढ़ता, उपयोगिता, अर्थवत्ता, अभिव्यंजना क्षमता, संप्रेषणीयता आदि अलग–अलग हेाती है। इस प्रकार से प्रतीक का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है क्योंकि सभी प्रकार की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रतीक से सहज सम्बन्ध होता है। दैनिक जीवन व लोक–व्यवहार के विविध क्रिया–कलापों से लेकर ज्ञान–विज्ञान, धर्म, संस्कृति, तन्त्र आदि के सरलतम से गूढ़तम प्रसंगों में प्रतीकों का प्रयोग विषय–वस्तु की संम्प्रेषणीयता हेतु किया जाता रहा है। इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 कुमार विमल, गीता रहस्य के संदर्भ से प्रतीक का अर्थ स्पष्ट करते हैं, '' जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले से गोचर हो और फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो, तब उस भाग को प्रतीक कहते हैं। इस नियम के अनुसार सर्वव्यापी परमेश्वर का ज्ञान होने के लिए उसका कोई भी प्रत्यक्ष चिन्ह, अंशरूपी विभूति या भाग 'प्रतीक' हो सकता है। ..... जब कोई अनुभूति गाढ़ और गूढ़ होती है, तब उसकी सम्पूर्णता या अन्योक्ति को व्यक्त करने के लिए आकांक्षी व्यक्ति को उसके तुल्यार्थ प्रतीकों का अन्वेषण करना पड़ता है। इस प्रकार संस्कृति और कला की सम्पूर्ण साधना प्रतीकों का अन्वेषण सिद्ध होती है।''[2] भाषा अथवा व्यंजना के अन्य साधनों के अपूर्ण अथवा असमर्थ होने पर अपने विचार, भाव या अनुभूति को व्यंजित करने के लिए एक मात्र शेष साधन प्रतीक का ही सहयोग लिया जाता है। डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल ने प्रतीक की इस विशेषता की ओर इंगित करते हुए लिखा है, '' जब हम विचार करते–करते किसी ऐसे स्तर पर पहुँच जाते हैं जहाँ सामान्य भाषा पद्धति हमारी अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ रहती है तो हम प्रतीक विधि का आश्रय लेते हैं। अत्यंत उलझे हुए तथा विस्तृत टिप्पणी वाले विषयों को भी प्रतीक विधि से बड़ी सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में प्रतीक जिस आकृति को प्रस्तुत करता है उससे बहुत अधिक अर्थ प्रच्छन्न रूप में उसमें निहित रहता है।''[3]

धर्म, दर्शन, गणित, विज्ञान के प्रतीकों और कला के प्रतीकों में अन्तर होता है। धर्म, दर्शन, गणित, विज्ञान के प्रतीक प्रायः निर्धारित एवं मान्य अर्थ रखते हैं जबकि कला के प्रतीकों का अर्थ प्रसंगानुसार परिवर्तनीय होता है। कलाकृति में प्रतीकों के संदर्भ में कलाकार व दर्शक सदैव एक मत हों–यह आवश्यक नहीं। दोनों प्रकार के प्रतीकों में एक अन्तर यह भी है कि कला के प्रतीक कल्पनाजन्य और भावोत्तेजक होते हैं और उपरोक्त अन्य प्रकार के प्रतीक बुद्धिजन्य और विचारोत्तेजक होते है। प्रतीक के स्वरूप को परिभाषित करते हुए डॉ0 शुकदेव श्रोत्रिय लिखते हैं, ''प्रतीक अलौकिक का लौकिक रूपान्तरण होता है अर्थात् वह एक काल्पनिक सत्ता का चाक्षुष इंगित (दृश्य या भौतिक संकेत या चिन्ह) होता है। प्रतीक अपने अर्थ का सम्पूर्ण पर्याय नहीं होता वह तो अपनी चाक्षुष सत्ता से ध्यान को किसी अप्रस्तुत, अशरीरी की ओर ले जाता है।''[4]

डॉ0 श्रोत्रिय ने अपने इस कथन में प्रतीक की दो सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर संकेत किया है। प्रथम तो यह कि प्रतीक किसी ऐसी वस्तु, भावना, विचार, सिद्धान्त, नियम या व्यावहारिक तथ्य अथवा अवधारणा को प्रस्तुत करता है जिसका कोई भौतिक रूप नहीं होता इसलिए उस तथ्य या अवधारणा को किसी अन्य समान गुण–धर्म या सादृश्य वाली भौतिक वस्तु, आकार, शब्द, शब्द समूह, रंग, ध्वनि, मुद्रा, क्रिया आदि के द्वारा प्रस्तुत या व्यक्त किया जाता है। यही भौतिक वस्तु 'प्रतीक' कहलाती है। दूसरे, प्रतीक के रूप में जो भौतिक वस्तु जिस अभौतिक वस्तु, क्रिया, मूल्य या अवधारणा को प्रस्तुत करती है वह भौतिक वस्तु (प्रतीक) से अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा यह प्रतीक उस अभौतिक और अव्यक्त को पूर्ण रूपेण प्रस्तुत करने में सक्षम भी नहीं होता। किन्तु उस अभौतिक और अव्यक्त को, अभिव्यक्ति के सीमित साधनों के कारण, प्रतीक द्वारा ही व्यंजित किया जा सकता है इसलिए प्रतीक के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। प्रतीक के संदर्भ में यह भी देखा गया है कि प्रतीक भौतिक व दृश्य वस्तुओं को भी प्रभावशाली व उद्देश्यपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। प्रतीक के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण है जो प्रतीक के अर्थ, स्वरूप, विशेषताओं और उसके विविध आयामों को प्रकाशित करते हैं–

1. प्रतीक पर दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से गहन अध्ययन प्रायः पश्चिम में ही हुआ है। भारत में व्यवस्थित रूप में पश्चिम के अनुकरण पर ही प्रतीक पर चिन्तन हुआ है। प्रतीक का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन स्वतन्त्र रूप से हुआ है, यद्यपि यह दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से प्रभावित हैं।
2. प्रतीकवाद प्रकृति से प्रेरित सिद्धान्त है। प्रतीक रचना के मूल में ब्रहमाण्डीय नियम सक्रिय रहते हैं। सृष्टि में जो रहस्यपूर्ण लय व्याप्त है, प्रतीक उसी को व्यक्त

करता है। यह लय ही मनुष्य और सृष्टि के मध्य संतुलन स्थापित करती है। मनुष्य के भौतिक जीवन में वह स्वयं और उसका परिवेश शामिल रहता है तथा उसके आध्यात्मिक जीवन में सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड होता है। दोनों के मध्य समन्वय और संतुलन साधने का कार्य यह आंतरिक लय ही करती है। यह लय ही अपने व्यक्त रूप या चिहन या संकेत रूप में प्रतीक है। इस प्रकार प्रतीक में पिण्ड और ब्रहमाण्ड दोनों की व्याप्ति है, दोनों का सामंजस्य निहित है। इस लय का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल लिखते हैं, ''लय एक ऐसा निरन्तर, निर्णायक एवं गतिपूर्ण पक्ष है जो किसी पदार्थ को अपने जनक अथवा जनित पदार्थ से सम्बन्धित करता है। अतः प्राणशक्ति से उत्पन्न होने वाली गति ही लय है। वस्तु की विशेषता में लय ही व्यक्त होती है। जब हम किसी वस्तु को किसी अन्य माध्यम में आकार देते हैं, तब भी यह लय ही व्यक्त होती है। अतः एक जीवित सर्प और उसकी पत्थर पर उत्कीर्ण आकृति में केवल रूप साम्य ही नहीं, व्यंजना साम्य भी है। प्रतीकीकरण एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति है जो समान लयपूर्ण अनेक पदार्थों को केवल निकट ही नहीं लाती वरन् परस्पर परिवतर्तित भी कर देती है।''[5]

3. प्रतीकवाद या प्रतीकीकरण में दृश्य या भौतिक माध्यम से अदृश्य या अभौतिक की व्याख्या की जाती है। वह जो अदृश्य है इतना महान व महत्वपूर्ण होता है कि दृश्य जगत की जिस सामान्य वस्तु के माध्यम से उसकी व्याख्या की जाती है, वह सामान्य वस्तु भी महत्वपूर्ण सार्वभौमिक सन्दर्भ ग्रहण कर लेती है।
4. प्रतीक द्वारा जिस ब्रहमाण्डीय शक्ति, विचार, भाव, क्रिया या सिद्वान्त की व्याख्या की जाती है, वह नकारात्मक या सकारात्मक, मानवहितकारी या विनाशकारी हो सकती है। आधुनिक चित्रकार, पिकासो के विश्वविख्यात चित्र 'ग्वेर्निका' में दोनों प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग है। श्री आर.वी. साखलकर ने इस चित्र की प्रतीकाकृतियों के विषय में लिखा है, ''बैल का चित्रण ..... पाशवी अत्याचार व अन्याय का प्रतीक है–घोड़ा जनता का प्रतीक है।''[6]
5. श्रेष्ठ कोटि के प्रतीक सार्वभौमिक, सार्वजनीन और कालातीत होते हैं। वे अव्यक्त, अभौतिक ब्रह्माण्डीय सत्य को व्यक्त करने वाले होते हैं। उनमें रहस्य का भाव भी रहता है।
6. प्राचीन काल में कबीले के नियम और कानूनों तथा कबीलों की समग्रता एवं संम्प्रभुता की भावना के प्रतिनिधित्व हेतु कोई न कोई प्रतीक चिन्ह अवश्य होता था। कबीला व कबीले की संस्कृति उस प्रतीक चिन्ह से पहचानी जाती थी। कबीले के लिए वह चिन्ह गौरव व सम्मान की वस्तु होती थी। आगे चलकर इसी भावना से राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। इस प्रकार मानव संस्कृति का विकास प्रतीकों के साथ–साथ हुआ।
7. प्रतीकों का उपयोग अनेक रूपों में हम अपने दैनिक व्यवहार में भी करते हैं। डॉ0 शुकदेव श्रोत्रिय ने लिखा हैं, '' सड़क की लाल बत्ती रूकने का तथा हरी चलने का प्रतीक बन गई है जबकि लाल अथवा हरे रंग का रूकने अथवा चलने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार राष्ट्र की अमूर्त परिकल्पना के लिए एक ध्वज प्रतीक वन जाता है। राष्ट्र–ध्वज के कुछ नीचे होकर फहरने को राजकीय शोक–प्रदर्शन का प्रतीक मान लिया गया है।''[7] इस प्रकार कुछ प्रतीक रूढ़ि या परम्परा के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं।
8. प्रत्येक संस्कृति व देशकाल ने अपने ज्ञान, अनुभव, रूचि और सामूहिक भावना के अनुसार प्रतीकों की रचना की है। विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न–भिन्न युगों में प्रयुक्त समकालीन उपकरणों का उपयोग भी प्रतीकात्मक आकृतियों में सर्वत्र परिलक्षित होता है। प्राचीन प्रतीक अप्रासंगिक हो जाने पर नवीन प्रतीक निर्मित किए जाते हैं। प्रतीक निर्माण का यह कार्य स्वतः स्फूर्त रूप में सभी संस्कृतियों में चलता रहता है।
9. एक ही प्रतीक को भिन्न–भिन्न समुदाय अलग–अलग अर्थ में ग्रहण करते हैं। काला रंग एक समुदाय में शुभ का प्रतीक है तो दूसरे समुदाय में अशुभ का। साथ ही प्रसंगानुसार प्रतीक अपना रूप और अर्थ बदल लेते हैं। सफेद एक प्रसंग में पवित्रता व निर्मलता का प्रतीक है तथा दूसरे प्रसंग में वैधव्य और नीरसता का प्रतीक है।
10. मनोविज्ञान के अनुसार प्रतीकों की प्रमुख विशेषता है कि वे अचेतन मन की दमित इच्छाओं की छद्म अभिव्यक्ति करते हैं तथा स्वभावतः श्रंगारमूलक होते हैं।

कला के संदर्भ में प्रतीक

सृष्टि की दृश्य एवं भौतिक वस्तुओं का चित्रण कलाओं में सरलता से किया जा सकता है किन्तु कलाकार के अदृश्य और अभौतिक सूक्ष्म भावों, विचारों और अनुभूतियों को कलाओं में प्रतीकों के माध्यम से ही अंकित किया जा सकता है। गूढ़, दुरूह विचारों और अनुभूतियों को कला में प्रतीकों के माध्यम से सरलता से व्यक्त किया जाता है ताकि दर्शक व श्रोता को कलाकार की अनुभूतियों को उसी रूप में संम्प्रेषित किया जा सके, जिस रूप में कलाकार उन्हें अनुभव करता है।

कला और प्रतीक का सम्बन्ध घनिष्ठ है। प्रागैतिहासिक काल से ही कला प्रतीकों का उपयोग और उनका विकास करती आ रही है। प्रागैतिहासिक मानव प्राकृतिक रूपों के आधार पर प्रतीक रचना करता था। मानव विकास के अगले चरण में मनुष्य ने प्राकृतिक रूपों के समन्वय् से अनेक काल्पनिक प्रतीकों की सृष्टि की तथा आधुनिक युग में मनुष्य ने अनेक लौकिक, अलौकिक व मानसिक तत्वों के सहायोग से सूक्ष्म प्रतीकों की रचना की है। कला व साहित्य में इन सभी प्रतीकों का उपयोग भी किया गया है और नवीन प्रतीकों की रचना भी की गयी है। प्रतीक विकास के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ० जी०के० अग्रवाल ने लिखा है, ''प्रतीकों की रचना केवल संसार में देखे गये रूपों के आधार पर ही नहीं

होती, कलाकार अनेक लौकिक–अलौकिक एवं वास्तविक–काल्पनिक वस्तुओं के संयोग से भी प्रतीक सृष्टि करते हैं। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ प्रतीकों का विकास यथार्थ से काल्पनिक और काल्पनिक से सूक्ष्म आकृतियों की दिशा में हुआ है।''[8]

प्रतीक रचना और प्रतीक प्रयोग करना मनुष्य का सहज स्वभाव है। जिन अनुभूतियों, विचारों और सिद्वान्तों को अभिव्यंजना के सीमित साधन व्यक्त कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं, ऐसी दशा में प्रतीक इस प्रकार के गम्भीर और गूढ़ विषयों को सरलता से व्यंजित कर देते हैं। डॉ० गिर्राज किशोर अग्रवाल मनोविज्ञानी युग का संदर्भ देते हुए प्रतीक को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, '' किसी अज्ञात वस्तु के लिए उसके भ्रम के रूप में रखी गई आकृति प्रतीक कहलाती है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस वस्तु का अस्तित्व अवश्य है। ऐसी अज्ञात वस्तु को किसी अन्य विधि से बोधगम्य नहीं बनाया जा सकता। अतः कलाओं में प्रतीकता अनिवार्य हो जाती है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि समस्त कला प्रतीकों का आश्रय लेकर ही विकसित हुई।''[9]

भारतीय कला में प्रतीकीकरण

भारत सहित पूर्व देशों की कला में प्रतीकीकरण की प्रधानता है। प्रतीक की यह अधिकता चित्र, मूर्ति एवं वास्तु के साथ–साथ साहित्य व संगीत में भी देखने को मिलती है। भारतीय कला में प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान तक प्रतीकों का भरपूर प्रयोग हुआ है। उनका रूप, स्वभाव और उद्देश्य समयानुसार बदलता रहा है।भारतीय कला में प्रतीकीकरण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव ने लिखा है, ''भारतीय कला भी भारतीय जीवन का प्रतिबिम्ब है। यहाँ के धर्म, दर्शन और यहाँ की संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए है। इस गुरूतर कार्य के लिए कलाकारों ने कुछ प्रतीकों का सहारा लिया है। ये प्रतीक ही भारतीय कला की वर्णमाला कहे जा सकते हैं। विभिन्न विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं विश्वासों को इन प्रतीकों ने साकार कर दिया है।''[10] भारतीय कला रूप–सादृश्य के स्थान पर आन्तरिक भाव, विचार, गुण व सौन्दर्य को अधिक महत्व देती है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय कला प्रतीकों का सहयोग लेती है। इस प्रकार प्रतीक विचार या दृश्य पक्ष ही नहीं भारतीय कला के सौन्दर्यशास्त्रीय उत्कर्ष को भी पूर्णता प्रदान करते हैं। इस तथ्य को प्रमाणित करते हुए डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव ने लिखा है, ''ये कला–प्रतीक न केवल विचारों की अभिव्यक्त करते हैं वरन् शोभा, आरक्षा एवं मांगलिक भावनाओं की संवृद्धि भी करते हैं। जहाँ ये कला प्रतीक किसी विशिष्ट विचार या भाव की सृष्टि के निमित्त नहीं भी होते हैं वहाँ भी ये अपने स्वरूप का मांगलिक प्रभाव डालते हैं और दर्शक के शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्य–बोध का परिष्कार करते हैं।''[11] इसके साथ ही कला ने प्रतीक–कोष को भी सम्पन्न बनाया है।

प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय कला और प्रतीक का प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। कलाओं के उद्भव काल में आदि मानव ने यथार्थ रूप–रचना की दक्षता के अभाव में प्रतीकात्मक रूपाकारों के माध्यम से अपने अबोध मन के उल्लास, संघर्ष, कौतुहल, भय, उत्साह, विनोद, क्रीड़ा आदि की व्यंजना की है। हीगेल के वर्गीकरण के अनुसार तो समूची प्रागैतिहासिक कला प्रतीकात्मक है, क्योंकि इसके रूपाकार प्रकृति में उपस्थित वास्तविक वस्तुओं से मेल नहीं खाते हैं वरन् सांकेतिक रूप में इन आकृतियों पर वास्तविक वस्तुओं का आरोपण किया जाता है, तभी उनके अर्थ समझ में आते हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त प्रागैतिहासिक गुफा–चित्रों में ऐसी आकृतियाँ भी हैं जो विशुद्ध प्रतीक रूप में ही अपने अर्थ प्रकट करती हैं, जैसे–अबाहु और सबाहु स्वस्तिक, ज्यामितिय आकृतियाँ, रेखा–जाल, चौक या वेदिका, लिपिवत चिन्ह एवं अन्य अस्पष्ट आकृतियाँ जिनका अर्थ समझा नहीं जा सका है। यहाँ पशु व मनुष्य की आकृतियाँ सांकेतिक चिन्हों(प्रतीक) के रूप में ही बनायी गयी हैं। कहीं–कहीं तन्त्र या जादू–टोने से सम्बन्धित आकृतियाँ भी मिली हैं, जिनका अर्थ विशुद्ध रूप से प्रतीकात्मक है। सिन्धु सभ्यता की कला में मानव, प्रकृति, मानवेतर व पशु–पक्षी आदि की आकृतियों का चित्रण है। इनमें अनेक आकृतियाँ प्रतीकात्मक अर्थों के साथ अंकित की गई हैं। यहाँ अनेक पशु व अतिमानवीय आकृतियाँ सम्भवतः धार्मिक प्रतीकता के साथ अंकित किए गये हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर पर एक विचित्र पशु जिसका शरीर बैल के समान, मुख पर हाथी जैसे दांत और सूँड, सिर पर सींग, गाय जैसे खुर अंकित हैं। इस आकृति के निश्चित प्रतीकात्मक अभिप्राय होंगे जो प्रकृति की शक्तियों के समन्वय की ओर संकेत करते हैं। एक अन्य मुहर पर सींगों का मुकुट पहने कोई देवता तथा मनुष्य की मुखाकृति वाला बकरा अंकित है। एक मुहर पर धार्मिक स्तम्भ के समक्ष एक बैल को लांघता व्यक्ति दिखाया गया है। ये आकृतियाँ निश्चित ही धार्मिक प्रतीकार्थों के साथ अंकित की गई हैं किन्तु सही अर्थ ज्ञात नहीं हो सका है। हड़प्पा से प्राप्त एक पात्र पर कछुआ, मीन और नदी को काटती हुई रेखाओं द्वारा प्रतीकात्मक रूप से अंकित किया गया है। पात्रों पर स्वस्तिक, शकरपारा, त्रिभुज, कुण्डली आदि रूपाकार आलंकारिक अभिप्रायों के साथ–साथ प्रतीकात्मक अर्थों को भी व्यक्त करते हैं। शिवलिंग का प्राचीनतम प्रतीकांकन भी सिन्धु सभ्यता में ही मिला है।

प्राचीन काल में कला में प्रायः वैदिक साहित्य में वर्णित धार्मिक प्रतीकों का उपयोग किया गया है, जैसे कमल, कल्पवृक्ष, देव, दानव आदि। इस प्रकार के प्रतीक यथार्थ आकृतियों पर आधारित थे। भगवान शिव को जटा–जूट, सिर से निकलती जल–धारा, नाग–भूषण, डमरू, त्रिशूल जैसे प्रतीकों के साथ अंकित किया गया है। गणेश को गजमस्तक और मानव शरीर को समन्वय करके मानव व मानवेतर शक्तियों के संयोग के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय कला में शेषशायी विष्णु धार्मिक प्रतीकवाद के श्रेष्ठ उदाहरण माने गये हैं। इसकी व्याख्या करते हुए डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल लिखते है,''क्षीर–सागर अनन्त और असीम का प्रतीक है, विष्णु और लक्ष्मी पुरूष तथा नारी के प्रतीक हैं। विष्णु की नाभि से निकलता हुआ कमल और उस पर बैठे ब्रहमा पुरूषत्व में निहित सृष्टि के बीज और सृष्टि के चतुर्दिक विकास के प्रतीक हैं।''[12] धार्मिक, दार्शनिक ग्रंथ तथा प्राचीन व

मध्यकालीन साहित्य इस प्रकार के प्रतीकों से भरा पड़ा है। भारतीय कला में कुछ प्रतीक आरोपित हैं जैसे–शिवलिंग, स्वस्तिक, बौद्ध कला में कमल आदि। कुछ वस्तुएं या रूप सानिध्य के कारण भी प्रतीक बन जाते हैं जैसे, मोरपंख और बांसुरी कृष्ण का प्रतीक आदि। ज्यामितिय आकृतियों, जैसे–वृत्त, त्रिभुज, वर्ग आदि को भी कला में प्रतीकात्मक अर्थों के साथ प्रस्तुत किया गया है। सिर के पीछे वृत्ताकार आभा मण्डल दिव्य गुणों का प्रतीक माना गया है। भारतीय चित्रकला की प्रत्येक शैली में रंगों को भी प्रतीकात्मक अर्थ के साथ लगाया गया है।

इस प्रकार वैदिक युग, तत्पश्चात् प्राचीन काल में ऐसे चिरस्थायी प्रतीकों का उद्भव हुआ जिनका अंकन युगों–युगों तक भारतीय साहित्य, चित्र और मूर्तिकला में होता रहा। इन प्रतीकों ने कला को समृद्ध बनाया और दार्शनिक आधार प्रदान किया। इन प्रतीकों का विकास विविध उद्देश्यों हेतु विविध रूपों में हुआ। डॉ० ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा हैं, '' आरक्षा एवं कल्याण की भावना के हेतु अनेक मांगलिक प्रतीकों की सर्जना हुई। इनमें श्रीवत्स, पूर्णकलश, त्रिरत्न, चक्र, मीन–मिथुन, दर्पण, पद्म, शंख, अंकुश, सूर्य, चन्द्र, हस्ति, अश्व, माला (एक पक्षी), छत्र, वृक्ष, पंचान्गुल आदि सम्मिलित हैं। ..... किन्हीं भी आठ प्रतीकों के सामूहिक अंकन को 'अष्ट मांगलिक प्रतीक' कहा जाने लगा। .....जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण सभी सम्प्रदायों में इन प्रतीकों को समान रूप से संम्पूज्य स्थान प्राप्त हुआ। ..... देवी एवं मानवेतर शक्तियों के लिए भी कतिपय प्रतीकों की अवधारण की गई जैसे श्री लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा, गणपति, अर्द्धनारीश्वर, शिवलिंग, गरूड़ आदि। ..... इसी प्रकार राजत्व के पारिचायक प्रतीकों के अंतर्गत चक्रवर्तिन, सिंहासन, चमर, (चँवर), छत्र, पादपीठ आदि की गणना हैं। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भारत में प्रतीक–पूजा के माध्यम से ही मूर्ति–पूजा का विकास हुआ।''[13] भारत में देवी–देवताओं के मानव रूप का विकास व इनकी पूजा का प्रचलन बाद में हुआ इस से पूर्व इनके प्रतीक रूपों की ही पूजा होती थी। देवी–देवजाओं के मानव रूपों का विकास भी शास्त्रोक्त प्रतीकों से ही विकसित हुआ। यहाँ उल्लेखनीय है कि आज भी ग्रामीण परिवेश में पीपल, बरगद आदि वृक्ष के नीचे चबूतरे पर रखे विभिन्न आकार प्रकार के प्रस्तर खण्डों को देवी–देवता के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है। यह प्रतीक–पूजा की हजारों वर्ष पुरानी भारतीय परम्परा है। प्रतीकों से देवी–देवताओं के मानव रूप के विकास के दृष्टान्त की ओर इंगित करते हुए डॉ० ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, '' शिव की मानव मूर्ति के विकास के पहले उनके स्वरूप के कतिपय और लक्षण भी लोकप्रिय हो चुके थे। इनमें नन्दी, त्रिशूल, चन्द्र, एवं गंगा उल्लेखनीय है। इनके अभाव में शिव की मूर्ति की कल्पना नहीं की जा सकती थी।''[14]

बौद्ध कला में कुछ पुराने प्रतीक नये अर्थों के साथ प्रस्तुत किए गये हैं तथा कुछ नवीन प्रतीक भी गढ़े गये हैं। कमल, वटवृक्ष बुद्ध के अर्थ में अंकित किए गये हैं। हाथी, छदन्त हाथी बुद्ध के पूर्व जन्मों के रूप में प्रस्तुत किए गये हैं। अजन्ता की सोलहवी गुफा में चित्रित 'बुद्धजन्म' के एक दृश्य में बुद्ध के जन्म लेते ही सात पग चलने वाली कथा को सात कमल पुष्पों के प्रतीक से अंकित किया गया है। डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल लिखते है ''यह प्रतीकात्मकता पुरानी परम्परा का अनुसरण प्रतीत होती है।''[15]

शारीरिक विशेषकर हस्त मुद्राएं भी प्रतीक रूप में प्रयोग की गई हैं। अजन्ता के चित्रों में इस प्रकार के प्रतीकीकरण के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। गुफा सं0–02 में चित्रित 'सर्वनाश' नामक चित्र में मुख व हस्त मुद्राओं की सर्वश्रेष्ठ व्यंजना है। चित्र मूक होने पर भी मुद्राएं सब कुछ कह दे रही हैं। शास्त्रीय नृत्य में भी मुद्राओं का प्रतीकात्मक महत्व बहुत अधिक है। रंगों के द्वारा भी प्रतीकात्मक व्यंजना की जाती है। भारतीय संस्कृति में रंगों के अलग–अलग प्रतीकात्मक अर्थ होते हैं। कलाओं में इनका उपयोग प्रायः उन्हीं प्रतीकात्मक अर्थों में किया जाता है। अजन्ता की सत्रहवीं गुफा में श्रंगाररत दर्पण देखती हुई राजकुमारी की आकृति में हरा रंग भरा गया है जो ताजगी का प्रतीक है। इसी प्रकार से अजन्ता के बाद के युगों की कला–पाल, अपभ्रंश, राजस्थानी व पहाड़ी आदि शैलियों में भी आकृतियों, रंगों, पशु–पक्षियों, वनस्पतियों यहाँ तक कि पृष्ठभूमि को भी प्रतीकात्मक अर्थ के उत्कर्ष के साथ चित्रित किया गया है जिसके कारण चित्र का भावनात्मक प्रभाव एवं आकर्षण और अधिक बढ़ गया है। राजस्थानी व पहाड़ी शैलियों में अंकित प्राकृतिक दृश्यों में पर्वतों, वृक्षों, पशु–पक्षियों, ऋतुओं व महीनों को मानवीय सुख–दुखों में सहभागी के रूप में प्रतीकात्मक अर्थों के साथ प्रस्तुत किया गया। चित्र में जो भाव नायक या नायिका के मन में रहता है, प्रायः उसी का प्रतिबिम्ब चित्र में अंकित प्रकृति में पाया जाता है। पशुओं का अंकन भी दैवत्व भावना के साथ किया गया है। पहाड़ी शैली के विषय में डॉ०जी०के० अग्रवाल लिखते हैं, ''श्रंगार सम्बन्धी चित्रों में शुक अथवा कपोत युगल का चित्रण हुआ है विरहिणी नायिका के चित्रों में झुकी हुई शाखाओं वाले मजनूं के वृक्ष (weeping willow)का अंकन हुआ है। नवयोवना के चित्रों में आम्र वृक्ष पर पके हुए फल दिखाये गये है।''[16] इस प्रकार कला के विकास के साथ–साथ प्रतीक विकास भी चलता रहा है।

निष्कर्ष

आधुनिक व समसामयिक कला में भी कलाकारों ने अपनी कला में प्रतीकीकरण को स्थान दिया है। उन्होंने पारम्परिक प्रतीकों की कभी पारम्परिक अर्थों में तो कभी नवीन संदर्भों एवं पारिस्थितियों में प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने नवीन प्रतीकों की रचना भी की है। एम.एफ. हुसैन आधुनिक कला के सबसे बड़े प्रतीकवादी चित्रकार कहे जा सकते है। उन्होंने पारम्परिक धार्मिक व पौराणिक प्रतीकों के साथ–साथ नवीन व समसामयिक प्रतीकों का अपने चित्रों में भरपूर प्रयोग किया है। उन्होंने भरतीय पौराणिक देवी–देवताओ (रामायण, महाभारत) के प्रसंगों को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया है। साथ ही मकड़ी, लालटेन, पिजड़े में बन्द चिड़िया, सर्प, वृक्ष, स्वस्तिक, हाथ, केक्टस, हाथी, घोड़े आदि प्रतीकों को पारम्परिक व नवीन प्रतीकार्थो के रूप में अंकित किया है। घोड़े की आकृतियों को उन्होंने अनगिनत प्रतीकात्मक सन्दर्भों में चित्रित किया

है। उनका रंगों का चयन व उनके तूलिकाघात, टेकस्चर, अन्तराल, विभाजन आदि भी गूढ़ प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। उनकी समूची कला साधना में प्रतीकीकरण का स्वरूप इतना व्यापक है कि इस पर अनेकों शोध–कार्यों की सम्भावना सदैव बनी रहेगी। समसामयिक सभी कलाकार किसी न किसी रूप में प्रतीकों का सहारा लेकर ही अपनी रचनाएं गढ़ रहे हैं। वर्तमान में लोकप्रिय इन्स्टालेशन विधा तो अपनी गहन व गूढ़ अभिव्यंजना के लिए नित नवीन प्रतीक तलाशती है तथा पारम्परिक प्रतीकों को नवीन व वर्तमान पारिस्थितियों के अनुकूल अर्थों में व्यंजित करती है। यहाँ लोक कला की चर्चा भी प्रासंगिक है। लोक कला का सम्पूर्ण रचना विधान प्रतीकात्मक होता है। इसके अंतर्गत मुख्य आकृतियां, आनुष्ठानिक आकृतियां, सजावटी अभिप्राय, रंग योजना सभी या तो प्रतीकात्मक आकारों में बने हेाते हैं या उनके अर्थ व उद्देश्य प्रतीकात्मक होते हैं।

अंत टिप्पणी

1. *डॉ0 ममता सिंह, भारतीय संस्कृति और लोक प्रतीक, पे0–09*
2. *डॉ0 कुमार विमल–सौन्दर्य शास्त्र के तत्व पे0–259*
3. *कला समीक्षा, डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल, पे0–122*
4. *डॉ0 शुकदेव श्रोत्रिय, कला विचार पे0–77*
5. *डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला–निबन्ध पे0–98*
6. *श्री आर.वी. साखलकर, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पे0–168*
7. *डॉ0 शुकदेव श्रोत्रीय, कला–विचार, पे0–79*
8. *डॉ0 जी0के0 अग्रवाल, कला निबन्ध पे0–92*
9. *डॉ० गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला निबन्ध पे०–91*
10. *भारतीय कला प्रतीक, डॉ०ए०एल० श्रीवास्तव, पे०–14*
11. *भारतीय कला प्रतीक डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव पे0–11*
12. *कला और कलम, डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल पे0–7*
13. *भारतीय कला प्रतीक, डॉ० ए.एल. श्रीवास्तव, पे0–14,15*
14. *भारतीय कला प्रतीक, डॉ0 ए.एल. श्रीवास्तव, पे0–16*
15. *कला और कलम, डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल, पे0–66*
16. *कला और कलम, डॉ०जी०के० अग्रवाल पे0–240*